आज विश्व में जिसे सेक्यूलर ज्ञान माना जाता है उसका अधिकांश पश्चिमी है। अर्थात् वह यूरोप और अमेरिका के वाशिंदों ने निर्मित किया है। ज्ञान की एक से अधिक प्रणालियां हो सकती हैं। अर्थात् भौतिक विश्व कैसे संचालित होता है, मानव मन कैसे काम करता है, मानव समाज का कैसा स्वरूप उचित है आदि पर एक से अधिक मत हो सकते हैं। बहुत से लोगों को लगता है कि विभिन्न धार्मिक मत और विभिन्न संस्कृतियों के देशज (स्थानीय) मत भी उतने ही उपयुक्त हो सकते हैं जितने आज स्थापित पश्चिमी नजरिये । और जो नजरिया आज प्रचलन में अधिक है वह उसके मानने वालों के राजनैतिक, आर्थिक और सैन्य वर्चस्व के कारण है न कि किसी ज्ञान मीमांसीय श्रेष्ठता के कारण। अत: या तो अपना देशज ज्ञान बनाया जाए या फिर उपलब्ध पश्चिमी ज्ञान को ही देशज या अपनी धार्मिक विश्व दृष्टि के अनुसार ढाला जाए। यह लेख इस तरह की एक कोशिश का लेखा-जोखा लेता है। हमारे यहां आज स्थानीय ज्ञान, ज्ञान के भारतीय स्वरूप आदि की भी काफी बात होती है। इस सारे संदर्भ में शिक्षा में काम करने वालों को इसे देखने-समझने की जरूरत है। कई सवाल भी आते हैं : क्या ज्ञान के इस तरह से देशीकरण, इस्लामीकरण या किसी और तरह के 'करण' से हम कहीं पहुंच सकते हैं ? क्या कोई भी ज्ञान कभी भी उसके निर्माता मन के आग्रहों से अछूता रह सकता है ? यदि नहीं तो क्या देशज ज्ञानों के अपने आग्रह वर्तमान प्रचलित ज्ञान के आग्रहों से अधिक शुभ हैं ? इन सवालों के बीच अपनी पारंपरिक पहचान एवं चिन्तन पद्धतियों तथा वर्तमान वैश्विक ज्ञान में संबंध क्या हो ? यही सवाल इस लेख के विषय हैं।

ज्ञानानुशासनों का इस्लामीकरण : देशज शिक्षा व्यवस्था का एक प्रस्ताव

❑ सुलेमान डांगोर

पिछले दशकों में योरोप, अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में इस्लामी मदरसे तेजी से फैले हैं। शुरू में छात्रों के लिए एक इस्लामी विश्व दृष्टि उपलब्ध करवाना ही इन मदरसों का आधारभूत मंतव्य था। पर हाल ही में उन्होंने अपना ध्यान इस्लामीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित कर लिया है। मुस्लिम समाज, जिसमें शैक्षणिक संस्थाएं शामिल हैं, के सेक्यूलराइजेशन की प्रतिक्रिया में इस्लामीकरण की परियोजना अमेरिका में इस्माईल - अल-फारूकी, हुसैन नस्र और फजलुर रहमान जैसे मुस्लिम अकादमिकों ने शुरू की। मूलत: इस्लामीकरण का अर्थ है पाठ्यक्रम में इस्लामी अनुशासनों का समावेश, पाठ्यसामग्री में निहित मुद्दों पर इस्लामी दृष्टिकोण उपलब्ध करवाना और जहां संभव हो सेक्यूलरीकृत अनुशासनों को इस्लामी दर्शन के भीतर ही निर्दिष्ट करना। इस संदर्भ में अलग-अलग स्थानों पर अब तक छह अंतर्राष्ट्रीय परिसंवाद इस्लामी दुनिया में हो चुके हैं। पहले पांच में ज्ञान और शिक्षण के संबंध में इस्लामी दृष्टि से अवधारणात्मक पत्र सामने आए, अकादमिकों को अपने-अपने अनुशासन के विषय में इस्लामी अंतर्दृष्टि के साथ लिखने के लिए प्रेरित किया गया। उनमें से अधिकतर अमेरिकन जर्नल ऑफ इस्लामिक सोशल सायंसेज में प्रकाशित हुए हैं। जो तीन विश्वविद्यालय इस प्रक्रिया को जारी रखने के लिए स्थापित किए गए उन्हें मिश्रित सफलता मिली। दक्षिण अफ्रीका में हुए छठे परिसंवाद ने एक कार्यशाला का रूप ले लिया जिसमें दक्षिण अफ्रीकी शिक्षकों और अंतर्राष्ट्रीय अकादमिकों ने साथ मिलकर प्रमुख स्कूली अनुशासनों के लिए, इस दृष्टि से, इस्लामीकृत पाठ्यक्रम निर्मित करने का प्रयास किया। यह आलेख इस्लामी मदरसों और स्कूली अनुशासनों का इस्लामीकरण करने की उनकी कोशिशों के औचित्य की व्याख्या करने का प्रयास है। मेरी दृष्टि में देशज ज्ञान प्रणालियों के पुनर्जीवन की मांग के परिप्रेक्ष्य में यह एक महत्त्वपूर्ण विकास है।

विषय परिचय

मुस्लिम संसार में शिक्षा की सामान्य दशा का निम्न बिंदुओं

में सारांश किया जा सकता है :

(क) परम्परानिष्ठ मुस्लिम विद्वानों की परिवर्तन विरोधी जिद के कारण पारम्परिक इस्लामी विद्याएं बहुत हद तक जड़ और रूढ़िबद्ध होती गई हैं।

(ख) मुस्लिम देशों में शिक्षा व्यवस्था आधुनिक सेक्यूलर और पारम्परिक इस्लामी पक्षों में विभक्त हो गई है।

(ग) पारम्परिक इस्लामी शिक्षा और आधुनिक सेक्यूलर शिक्षा के सिद्धांतों में विवाद के कई बिन्दु हैं।

शिक्षा के इस द्विपक्षीय विभाजन ने मुस्लिम विद्वानों, अकादमिकों और बौद्धिकों को गंभीर दुविधा में डाल दिया है। दोनों तरह के पाठ्यक्रमों को एक दूसरे से स्वतंत्र किंतु साथ-साथ रखने से दो तरह के शिक्षार्थी सामने आए हैं : एक, वे जो केवल इस्लामी विद्या के प्रति निष्ठावान हैं और दूसरे, वे जो आधुनिक विज्ञानों से वाकिफ हैं। स्कूली पाठ्यक्रमों से इस्लामी शिक्षा को पूरी तरह हटा देना अधिकांश मुसलमानों को स्वीकार नहीं है क्योंकि इसका अर्थ होगा पश्चिमी ढंग की व्यवस्था का पूर्ण प्रभुत्व और परिणामत: इस्लामी सिद्धांतों और मूल्यों का हाशियाकरण। और फिर धार्मिक संस्थानों के पाठ्यक्रमों में सेक्यूलर पाठ्यक्रमों को मिला देने से उस खाई को नहीं पाटा जा सकता जो इन दो संरचनाओं में हर स्तर पर है : उद्गम, विश्वदृष्टि, उद्देश्य, पद्धति और ज्ञान मीमांसा।

मुस्लिम देशों में प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लिए जो पाठ्य सामग्री और शिक्षण पद्धतियां काम में ली जाती हैं वे अपने कथ्य व संरचना दोनों में 'पश्चिमी' हैं। प्राकृतिक और जीव विज्ञान डार्विन, फ्रॉयड और कार्ल मार्क्स जैसे चिंतकों के प्रभुत्वशाली दर्शन से प्रभावित रहे हैं जो प्रकृति और इतिहास की समस्त संघटनाओं को यांत्रिक कारणता के नुक्ते से समझने की कोशिश करते हैं। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, जैविकी, अर्थशास्त्र, गणित, इतिहास और भूगोल जैसे अनुशासनों में आधि-भौतिक विश्वासों का कोई संदर्भ तक नहीं होता (देखें, ब्रोही, 1988, पृ.7)।

प्राकृतिक/भौतिक और सामाजिक विज्ञानों के संस्थानों के मुस्लिम स्नातकों की मनोभूमि इन्हीं विज्ञानों के पश्चिमी स्नातकों से बहुत फर्क नहीं है। मुस्लिम राजनेता, वकील, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, स्वास्थ्य सेवाओं के व्यावसायिक इत्यादि सभी समस्याओं, उनको भी जो मुस्लिम दुनिया की खास अपनी हैं, को उन दृष्टियों और पद्धतियों से सुलझाने की कोशिश करते हैं जो कि योरोप और अमेरिका में विकसित हुई हैं। लेकिन सुलझने की बजाय इस प्रक्रिया से मुद्दे और उलझ जाते हैं। यह मुस्लिम शिक्षाविदों, समाज विज्ञानियों और धार्मिक विद्वानों के लिए गहन चिंता का विषय रहा है और उनमें से कुछ ज्ञान के इस्लामीकरण को ही इस दुविधा का समाधान मानते हैं।

इस आलेख का मंतव्य इस्लामी विद्याओं की दशा या शिक्षा के द्विविभाजन पर विचार करना नहीं है बल्कि इस्लामी और आधुनिक सेक्यूलर शिक्षा प्रणालियों के परस्पर विरोध पर एकाग्र होना है। मैं अपनी बात इस्लामी और पश्चिमी ज्ञानमीमांसाओं के मध्य मौजूद तनाव की पड़ताल से शुरू करूंगा, विशेषत: समाज विज्ञानों से उनके संबंध के परिप्रेक्ष्य में। इसके बाद मैं क्रमश: ज्ञान और समाज विज्ञानों के इस्लामीकरण की अवधारणा की एक रूपेरखा बनाने का प्रयास करूंगा। इस्लामीकरण से जुड़ी समस्याओं का विश्लेषण और इस्लामीकरण की परियोजना के भविष्य का आकलन भी आलेख का हिस्सा होंगे।

पश्चिमी और इस्लामी ज्ञान मीमांसाओं में आपसी विरोध :

धर्मशास्त्री दार्शनिक और रहस्यवेत्ता अबु हामिद अल-गजाली (1111 ई.) ने ज्ञान को अल-इल्म अल-अक्ली (वह ज्ञान जो बुद्धि व तर्कणा से अर्जित किया जाता है।) और अल-इल्म अल-नक्ली (दिया गया, प्रदत्त ज्ञान) में वर्गीकृत किया है। दूसरी तरह का ज्ञान दैवीय उद्घाटन से प्राप्त होता है और इसे ही मुस्लिम विद्वान इस्लाम में ज्ञान का प्राथमिक स्रोत मानते हैं।

जिस वर्गीकरण को मुस्लिम विद्वानों ने मानक माना उसमें दैवीय (सेक्रेड) और सेक्यूलर एकनिष्ठ थे और परस्पर विरोधी व असंवादी पक्षों की तरह निरूपित नहीं थे। मुस्लिम संसार में पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक सेक्यूलर शिक्षा में जो वैमनस्य अब नजर आता है, वह बाद में हुआ - उपनिवेशवाद की एक विरासत। पश्चिमी और इस्लामी ज्ञान मीमांसाओं के मध्य विरोध कई स्तरों पर है। मैं इनमें से उन तीन पर विचार करूंगा जिन्हें मैं सबसे बुनियादी मानता हूं : शिक्षा के उद्देश्य व लक्ष्य, शिक्षा का सेक्यूलरीकरण और शिक्षा में मूल्य व्यवस्था।

शिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य :

यह सर्व ज्ञात है कि सेक्यूलर शिक्षा के उद्देश्यों व लक्ष्यों पर कोई मतैक्य नहीं है (शरीफी, 1979, पृ.78) बल्कि कुछ शिक्षाविद् तो इसी पर संदेह करते हैं कि क्या शिक्षा का कोई पूर्वनिर्धारित लक्ष्य होना चाहिए ? (पीटर्स, 1959) सेक्यूलर दृष्टिकोण में शिक्षा का अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया और अज्ञात के संधान से लिया जाता है। पश्चिमी विश्वदृष्टि के मुताबिक शिक्षा का एक सामान्य, घोषित उद्देश्य एक अच्छे व्यक्ति व नागरिक का निमार्ण करना रहा है

(हुसैन, 1979, पृ.38)। यद्यपि इस उद्देश्य की प्राप्ति कठिन है क्योंकि 'एक अच्छे व्यक्ति व नागरिक' की परिभाषा सापेक्षिक होती है। संभवत:, इसी कारण से, कुछ शिक्षाविद् मूल्य-मुक्त-शिक्षा व्यवस्था का समर्थन करते हैं।

सामान्य रूप से इस जीवन में आराम, समृद्धि और खुशी हासिल करना ही शिक्षा का चरम लक्ष्य है। यह इस पूर्वमान्यता पर टिका है कि पृथ्वी पर मानवीय उपक्रम की परमसिद्धि भौतिक सभ्यता की स्थापना में और जीवन के आनन्द के पूर्ण उपभोग में हैं। तर्कश: यह कहा जा सकता है कि अपने चरित्र में शिक्षा उपयोगितावादी हो गई है, कि इसे इसी तरह संगठित किया जाता है कि यह करियर अवसर उपलब्ध कराने का और बाजार-तंत्र की जरूरतों को पूरा करने का माध्यम भर रह जाए। भूमंडलीकरण ने इस प्रवृत्ति को और बल प्रदान किया है।

अब तक के कहे से स्पष्ट है कि नैतिक या आध्यात्मिक विकास आधुनिक सेक्यूलर शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। आदर्शवादी मत की वो आरंभिक अपेक्षा कि शिक्षक को समस्त शुभ, सत्य और सुंदर का प्रतिदर्श होना चाहिए (एकिनपेल, 1981, पृ.36) पूर्व-महाविद्यालीय और महाविद्यालीय संस्थानों में लगभग अप्रासंगिक हो गई है।

दक्षिण अफ्रीका में वर्तमान रुख इस बात की पुष्टि करता है। परिणाम-केन्द्रित शिक्षा संबंधी दस्तावेजों के अध्ययन से पता चला है कि सारे संसार की तरह वहां भी शिक्षा के उद्देश्य निर्द्वन्द्व ढंग से भौतिक विकास को समर्पित हो गए हैं। यूनिवर्सटी ऑफ डर्बन-वेस्टविले के परिसंवाद में गाउटेन्ग शिक्षा विभाग के भूतपूर्व उप महानिदेशक एन्वर मोटाला द्वारा की गई आरंभिक टिप्पणी आंखें खोलने वाली है:

'कुछ लोग असहमत हो सकते हैं लेकिन मेरे मन में कोई सन्देह नहीं कि परिणाम-केन्द्रित शिक्षा के बारे में हमारा वर्तमान विमर्श उत्तरोत्तर ऐसे प्रौद्योगिकीय निर्धारक द्वारा संचालित किया जा रहा है जिसके, मेरी दृष्टि में, शिक्षा और शिक्षाविद्ों की भूमिका पर गंभीर प्रभाव पड़ने वाले हैं।

यह विमर्श आर्थिक क्षमता, कुशलता, स्कूल से व्यवसाय हस्तांतरण, उत्पादन के मानकों और उसके उद्देश्यों की समानार्थकता और जीवन पर्यन्त शिक्षण के मुहावरों से अतिरंजित है यद्यपि वास्तव में इसका अर्थ है आर्थिक क्रियाओं में सक्रियता के लिए जीवन पर्यन्त पढ़ाई (गुलाम एवं खुमालो, 1997)।

कुछ लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि परिणाम-केन्द्रित शिक्षा की संकल्पना मूलत: व्यवसाय क्षेत्रों और ट्रेड यूनियनों द्वारा की गई थी और इसका प्रस्फुटन एक प्रशिक्षण प्रतिमान से हुआ था। कुछ लोगों की यह धारणा है कि बेरोजगारी की वर्तमान दर, उत्पादन ह्रास और मुद्रास्फीति का सामना परिणाम -केन्द्रित शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है। स्कूलों से अपेक्षा की जाती है कि वे स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य शिक्षित श्रमशक्ति उत्पादित करें। यदि शिक्षा के उद्देश्य पूर्णत: आर्थिक मंतव्यों द्वारा संकुचित हो रहे हैं तो यह खतरा दरपेश है कि हम एक तकनीकग्रस्त समाज बना रहे हैं जिसमें वे सब अनिवार्य खामियां होंगी जो कई औद्योगिक देशों में अनुभव की जा चुकी हैं।

इस्लाम में शिक्षा का मंतव्य ऐसे ईश्वर-अभिमुखी और सद्चेतना सम्पन्न व्यक्ति का निर्माण करना है जो दैवीय निर्णय के अनुसार जीवन जीता है। जॉन सहादत (1997) ने यह मत रखा है कि सूचनासम्पन्न व्यक्ति शिक्षित व्यक्ति नहीं होता, कि मुस्लिम शिक्षा इस आस्तित्विक चुनौती को स्वीकार करती है कि व्यक्ति जिज्ञासा को केवल जानने के स्तर से होने के स्तर तक उठाया जा सकता है। 'इल्म' (शब्दश: 'ज्ञान') में जीवन के सारे आयाम सम्मिलित हैं : बौद्धिक, भौतिक और आध्यात्मिक। मनुष्य के भौतिक, भावात्मक, बौद्धिक, कल्पनात्मक और आध्यात्मिक पक्षों के प्रशिक्षण के माध्यम से मानवीय व्यक्तित्व का संतुलित विकास ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। (हुसैन, 1979, पृ.44) शिक्षा के संबंध में सर्व समावेशी दृष्टिकोण का अर्थ है: मस्तिष्क का संवर्द्धन, भीतरी आत्म का विकास और बौद्धिक व आध्यत्मिक सद्गुणों की लब्धि।

यह स्पष्ट है कि इस्लाम में शिक्षा केवल भौतिक आवश्यकताएं पूरी करने तक सीमित नहीं है और न ही उसका उद्देश्य शिक्षार्थियों को व्यावसायिक कुशलता और करियर अवसर प्रदान करना है। शिक्षा अपने चरित्र में उपयोगितावादी नहीं हो सकती और न ही कैरियर-प्लानिंग उसकी मूलभूत कार्यपद्धति हो सकती है। और न ही ज्ञान को अपने में एक लक्ष्य स्वीकार किया जा सकता है - बौद्धिक जिज्ञासा तृप्त करने का साधन। इसके विपरीत, इस्लाम में शिक्षा उच्चतर नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य पाने का, सद्चेतन मनुष्यत्व के विकास का और परिवार, समुदाय एवं मनुष्य मात्र के आध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक स्वास्थ्य को अर्जित करने का माध्यम है।

संक्षेप में, शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिए:

1. ज्ञान, योग्यता और सद्गुणों की उपलब्धि का प्रावधान
2. व्यक्तित्व के **समस्त** पक्षों का विकास

3. शिक्षार्थियों में शुभ के प्रोत्साहन व अशुभ के दमन की प्रवृत्ति की उत्प्रेरणा
4. ईश्वर-अभिमुखी मनुष्यों के विकास का पोषण
5. परिवार, समुदाय व मनुष्य मात्र के भौतिक, नैतिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्रगति

सेक्यूलर पद्धतियों में ईश्वर में आस्था, वैयक्तिक विश्वास और सज्जनता किसी अध्यापक की दक्षता निर्धारण में प्रांसगिक कारक नहीं माने जाते। शिक्षक की दक्षता इन कारकों पर निर्भर करती है : ज्ञान (विषय-वस्तु, बालक विकास, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, तकनीक, शिक्षण प्रविधियां, अधुनातन शोध आदि), योग्यता (शिक्षण-संबंधी) और अन्तर-वैयक्तिक संबंध (सहकर्मियों व शिक्षार्थियों के साथ)।

बहरहाल, इस्लाम में शिक्षक का कर्तव्य है अपने शिष्यों को जीवनोपयोगी ज्ञान हस्तांतरित करना। वह सरकार का या निजी संस्था का वेतनभोगी कर्मचारी भर नहीं है बल्कि ऐसा प्रतिदर्श है जिसका अनुसरण किया जा सके। आदर्श अपेक्षा यह होती है कि ज्ञानी होने के साथ-साथ शिक्षक आस्था और सद्गुणों से सज्जित ऐसा व्यक्ति हो जिसका आचरण छात्रों को प्रभावित कर सके। उससे अपेक्षा होती है कि वह अपने सर्वोत्तम प्रयत्न से सामाजिक व बौद्धिक संदर्भ में इस्लामी नैतिकता व चरित्र की छाप छात्रों के मन पर डाल सके।

शिक्षा का सेक्यूलरीकरण :

पुनर्जागरण से पूर्व चर्च के विरुद्ध नागरिक समाज के विरोध के परिणामत: योरोप में समाज के प्रत्येक क्षेत्र का, शिक्षा सहित, सेक्यूलरीकरण हुआ । उसी के परिणामस्वरूप हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था जीवन के विशुद्ध भौतिकतावादी दर्शन पर आधारित है और इसका सारा जोर मूलत: बौद्धिक प्रगति के जरिए व्यक्ति और समाज के भौतिक स्वास्थ्य पर है।

सेक्यूलर शिक्षा के आधार तर्कणावाद, आनुभविकता और तथ्य व अनुभव का समावेश है। ज्ञान के प्रति यह वैज्ञानिक दृष्टि, जो गैर-अनुभवगम्य ज्ञान को वर्जित करती है, अपने शिक्षार्थियों में अनुभव-केन्द्रिक दृष्टिकोण का विकास और तत्संबंधी परा-आनुभविक का संकुचन जैसे कि दैवीय नियम, सिद्धांत और मूल्य जिनका ज्ञान, तकनीक और योग्यता के अर्जन में कोई स्थान नहीं रह जाता।

इस्लामी ज्ञानमीमांसा में इल्हाम की बुनियादी भूमिका है। तर्कणा, ऐन्द्रिय अभिग्रहण, अंतश्चेतना और अनुभव (जिसमें प्रयोग और पर्यवेक्षण शामिल हैं।) के अतिरिक्त इल्हाम भी ज्ञान का प्राथमिक स्रोत है। अंतत: इल्हाम या दैवीय उद्घाटन ही उस इस्लामी विश्वदृष्टि का सत्व है जिससे इस्लामीकरण की प्रक्रिया निर्मित और निर्देशित होती है (नस्र, 1991)।

इल्हाम के बिना मानवीय व्यवहार को समझने की प्रत्येक कोशिश को मुस्लिम विद्वान अपर्याप्त मानते हैं। उनके मुताबिक वर्तमान शिक्षण सैद्धांतिकियां मनुष्य के व्यक्तित्व के संपूर्ण रूप को नहीं, उसके कुछ निश्चित पक्षों-सामाजिक, भौतिक, जैविक, मनोविज्ञान- को ध्यान में रखकर निर्मित हुई हैं। उनकी राय में परस्पर विरोधी इन सिद्धांतिकियों की अतिरंजना समग्रतावादी नहीं हो सकती क्योंकि वे मनुष्य के क्रियाकलापों के आधि-भौतिक आयाम को संबोधित ही नहीं करती है। इस्लाम में शिक्षा एक समावेशी प्रक्रिया है जिसमें मुनष्य के व्यक्तित्व के भौतिक, बौद्धिक, भावात्मक और आध्यात्मिक विकास अंतर्गुम्फित हैं (हुसैन, 1979, पृ.44)।

धार्मिक-सेक्यूलर के विभाजन का मुस्लिम समाज पर गहरा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप समाज विज्ञानों और पारम्परिक इस्लामी विद्याओं के बीच वो खाई खुद गई है जो हम आज देखते हैं। वे जो पारम्परिक शिक्षण संस्थाओं से निकल कर आते हैं अधिकांशत: समाज विज्ञानों के प्रति अज्ञानी होते हैं और समकालीन संसार की चुनौतियों से निपटने के लिए प्राय: असमर्थ। जहां कहीं भी परम्परानिष्ठों ने शासन में सक्रिय भूमिका निभाई है, जैसे कि ईरान में, वहां वे एक आधुनिक राज्य का प्रशासन चलाने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं।

दूसरी तरफ सेक्यूलर संस्थाओं के स्नातक प्राय: इस्लामी विद्याओं से अपरिचित होते हैं लेकिन इन्हीं संस्थाओं से मुस्लिम समाज को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने वाला बौद्धिक, राजनैतिक और सामाजिक नेतृत्व निकल कर आया है।

शिक्षा में मूल्य :

प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था में कुछ मूल्य होते हैं यद्यपि कुछ शिक्षाविद् मूल्य-निरपेक्ष शिक्षा की प्रस्तावना करते हैं। अब पश्चिमी और इस्लामी दोनों विद्वान इस पर सहमत हैं कि समस्त विज्ञानों में कहीं पश्चिमी संस्कृति व सभ्यता अन्तर्युक्त है और यह भी कि खुद पश्चिमी सभ्यता की विश्वदृष्टि और बौद्धिक अंतर्दृष्टि कई संस्कृतियों, दर्शनों और मूल्यों के समागम से निर्मित हुई है। अल-अत्तास (1979) के मुताबिक दार्शनिक और ज्ञान मीमांसात्मक घटक तथा शिक्षा, नैतिकी व सौन्दर्यशास्त्र के मूलाधार प्राचीन यूनान से; विधि, राज्य-व्यवस्था व शासन के तत्व रोम से; धार्मिक विश्वास यहूदी धर्म व ईसाइयत से और स्वाधीन, राष्ट्रीय आत्म तथा पारंपरिक मूल्य तथा प्राकृतिक व भौतिक विज्ञानों का विकास

व प्रगति लेटिन, जर्मन, कैल्टिक व नॉर्डिक संस्कृतियों से पश्चिमी संस्कृति में आए हैं (वही, पृ.20)।

बर्गिन विज्ञान को 'अन्तश्चेतनात्मक और मूल्य-विषयी सांस्कृतिक रूपाकार' की तरह परिभाषित करते हैं (1998, पृ. 48, 95) जबकि वर्कमाइस्टर का तर्क है कि 'संघटकों की मूलभूत मूल्य प्रतिबद्धता के बिना व्याख्या व पूर्वानुमान असंभव है।' (1959, पृ.449)

बार्बर की मान्यता है (1976) कि न सिर्फ पर्यवेक्षण की प्रविधियां बल्कि वे आंकड़े भी जिनमें आंकड़ों को निरूपित किया जाता है, सिद्धांतों से आक्रांत सिद्ध हुए हैं। ट्यूडर कहते हैं, ''विज्ञान भी किसी अन्य सामाजिक गतिविधि की तरह ही है और उस पर भी 'तर्केतर' अवरोध और चालक दोनों काम करते हैं।'' (1983, पृ.31) और रावेट्ज (1975) के अनुसार आधुनिक विज्ञान योरोपीय संस्कृति का अविभाज्य घटक है।

अनवर अब्राहम (1990) के शब्दों में, ''समस्याओं के चुनाव से लेकर चयनित पर्यवेक्षणों में, नियमों के संचालन में, 'तथ्यों' के अनुसंधान में, शोध के वित्तीय आधारों में और निष्कर्षों के उपयोग तक में, अर्थात् तथाकथित 'वैज्ञानिक उपक्रम' के हर चरण में व्यक्तिनिष्ठता और मूल्य निर्णय की घुसपैठ रहती है।'' दरअस्ल मनुष्य परिवार तथा सामाजिक और शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से सामाजीकरण के उत्पाद होते हैं और इससे भी अधिक वे विकल्पों में से सजग चयन करते हैं और व्यक्तियों, सामाजिक समूहों और पूरे समाज के आचरण की समीक्षा करते हैं। चरम वस्तुनिष्ठता लगभग अप्राप्य है।

आधुनिक विज्ञान की विषय-सापेक्षता और पूर्वग्रह स्वभावत: इसके अन्य संस्करणों जैसे सामाजिक और व्यावहारिक विज्ञानों पर भी लागू होते हैं। मिर्डाल के अनुसार, ''वैज्ञानिक सिद्धांत इसलिए मूल्य-आविष्ट हो जाते हैं क्योंकि समाज उन लोगों से बना है जिनके कई हेतु होते हैं। इस अर्थ में मूल्य-उदासीन समाज विज्ञान की बात शुद्ध बकवास है। ऐसा न कभी था, न होगा।'' (मिर्डाल, सिमे, 1969, पृ.121 में उद्धृत)। सिमे आश्वस्त हैं कि 'समाज विज्ञानी अनुसंधानों में मूल्यों के दखल को रोका नहीं जा सकता।' (वही, पृ.193)। पार्सन (1968) की मान्यता है कि समाज विज्ञान की जड़ संस्कृति में होती है।

जो मानववाद सेक्यूलर शिक्षा में अंतर्भुक्त है वह अद्वितीय, अलंघ्य, निरपेक्ष नैतिक या आध्यात्मिक मूल्यों को नकारता है और इसके बरक्स तर्कणा की सर्वोच्चता प्रतिपादित करता है, रूढ़ियों को प्रश्नांकित करता है और समस्त मूल्यों को, यहां तक कि सार्वभौम मूल्यों को भी, सापेक्षिक मानता है और इसलिए परिवर्तन व रूपान्तरण के अधीन भी। समस्त विश्वास, विचार और संस्थाएं ऐतिहासिक रूप से निर्धारित होती हैं।

हचिन्स की चेतावनी है :

''यदि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का विकास व सुधार है तो मूल्यहीन शिक्षा की बात ही बदतोव्याघात (अंतर्विरोधयुक्त) है। जो व्यवस्था मूल्यों के अस्तित्व से इंकार करती है, शिक्षा की संभावना से भी इंकार करती है। सापेक्षतावाद, विज्ञानवाद और प्रति-तर्कणावाद ... इन सबने शिक्षा में उस बिखराब को शुरू किया है जिसका अंत पश्चिम के विध्वंस में होगा।'' (हचिन्स, 1953, पृ.71-72)

मुसलमानों में अधिसंख्यक के लिए मूल्य एक 'प्रदत्त' है, उनका प्राथमिक स्रोत कुरआन है जिसमें दैवीय अभिलक्षण और मसीहाई ढांचा भी शामिल है। नैतिक मूल्य इन्हीं स्रोतों से प्रसूत होते हैं और इन्हीं पर अवलम्बित रहते हैं। वे ऐसे मानक हैं जिनसे समस्त दूसरे मूल्यों को मापा जाता है और स्वीकृत या खारिज किया जाता है। इन मूल्यों को सापेक्षिक नहीं, शाश्वत और निरपेक्ष माना जाता है। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में इस्लामी मूल्य व्यवस्था प्रतिबिंबित होनी ही चाहिए। अनीस अहमद का निष्कर्ष है कि शिक्षा व्यवस्था को मूल्य केन्द्रित होना ही चाहिए (अहमद, 1997, पृ.55-56)।

समकालीन सेक्यूलर शिक्षाविद् अब विशिष्ट व्यक्तिमत्ता, विश्वासों, विचारों और दृष्टिकोणों को स्वीकार करने लगे हैं। उदाहरण के लिए क्रॉथवॉहल की ट्रेक्सॅनॉमी प्रभावी क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण श्रेणी के रूप में 'मूल्य या मूल्य संकुल द्वारा चारित्रिकीकरण' को सूचीबद्ध करती है जिसका संबंध एक सुसंगत मूल्य व्यवस्था और जीवनदर्शन के विकास से है और मनुष्य जीवन व उसकी गरिमा से भी। (क्रॉथवॉहल, 1964, पृ.165) लेकिन इस श्रेणी के उद्देश्यों में से किसी एक को भी अपनी प्रकृति में 'आध्यात्मिक' नहीं कहा जा सकता।

इस्लामीकरण : एक प्रतिक्रिया

प्राकृतिक व सामाजिक विज्ञानों की अनुभववादी-तार्किक प्रत्यक्षवादी परंपरा इतनी बाध्यकारी होती गई कि इसने अपने आपको मुस्लिम देशों में भी स्थापित कर लिया। अभी हाल तक मुस्लिम देशों में ही नहीं पश्चिम में रहने वाले मुस्लिम समाज विज्ञानियों ने भी इसकी ज्ञान मीमांसा व प्रविधि को अपरीक्षित ही मान्यता दे रखी थी और मानवीय स्वभाव के विषय में इसकी धारणाओं और सिद्धांतों को भी । इस दृष्टि परिवर्तन ने अब मुस्लिम संसार में धर्म व विज्ञान के दिक्-विरोध को और गहरा कर दिया है। दो भिन्न शिक्षा व्यवस्थाओं-पारम्परिक इस्लामी और आधुनिक सेक्यूलर जो तकनीकी या अनुप्रयोगी विज्ञान या समाज विज्ञानों के रूप में है, का सह-अस्तित्व अपने में इस बंटवारे का साक्ष्य है।

ज्ञान का इस्लामीकरण :

यह कहा जा सकता है कि ज्ञान के इस्लामीकरण की प्रक्रिया मुस्लिम विद्वानों द्वारा देशज ज्ञान व्यवस्था के निर्माण (या पुर्नर्निमाण) की कोशिश का प्रतिनिधि है।

इस्लामीकरण की प्रक्रिया में संलग्न मुस्लिम विद्वानों के प्रयासों की प्राकृतिक/भौतिक व मानव/समाज विज्ञान में आ रही नई अंतर्दृष्टियों से समर्थन मिला है। 1970 के दशक से ही वैज्ञानिकों ने इस संसार व इसके निवासियों को समझने के लिए एक नयी दृष्टि विकसित की है। स्पैरी कहते हैं : मनुष्य के आन्तरिक अनुभव की विविधता को ... न सिर्फ विज्ञान में नई वैधता हासिल हुई है बल्कि उन्हें मनो-रासायनिक शक्तियों पर वरीयता भी दी जा रही है (1988, पृ.608)।

अब काफी समाज विज्ञानी और विज्ञान-चिंतक मानव व्यवहार की प्रकृतिवादी या अर्द्धभौतिक व्याख्याओं को वैज्ञानिक पूर्वानुमान के लिए अपर्याप्त मानने लगे हैं (लाउच, 1969, पृ.235) क्योंकि इनसे पराभौतिक यथार्थ के अनुभव (मोस्टर, 1980), वैयक्तिक चेतना सम्पन्नता और अन्तश्चेतना को न्यायपूर्ण ढंग से समझा नहीं जा सकता।

हावर्ड भी यह छूट देते हैं, ''... यदि मनुष्यों के चारित्रिक लक्षण उन विषयों से भिन्न हैं जिनको दूसरे विज्ञान अध्ययन करते हैं तो मानव व्यवहार संबंधी एक उपयुक्त विज्ञान की जरूरत है जो अब तक उपलब्ध से किंचित भिन्न हो।'' (हावर्ड, 1984) मैक्स वेबर ने मानव व्यवहार को सह-अनुभूति के सिद्धांत से समझने का रास्ता सुझाया था यानि अपने अध्ययन विषय के साथ सहानुभूति ताकि उसके व्यवहार के पीछे के मंतव्यों व कारणों को समझा जा सके। दिलचस्प है कि सामाजिक व्यवहार में आध्यात्मिक कारकों की वैधता को नकारने की परम्परा को भी चुनौती दी जा रही है। लाउच समाज विज्ञान को 'नीति विज्ञान' के रूप में परिभाषित करते हैं और मानवीय आचरण की नैतिक व्याख्या प्रस्तावित करते हैं (1969, पृ.235)।

पिछले चार दशकों से मुस्लिम विद्वान आधुनिक सेक्यूलर शिक्षा की ज्ञानमीमांसा और मुस्लिम समाज पर उसके प्रभाव के विषय में विमर्शरत हैं। वे इस्लामी सिद्धांतों और मूल्यों के आधार पर ज्ञानानुशासनों में सामग्री व शिक्षण पद्धति की पुनर्रचना की आवश्यकता को पहचानते हैं। ज्ञान और समाज विज्ञानों के इस्लामीकरण की अवधारणा का सूत्रपात अब्दुल हमीद अबु सुलेमान ने 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में किया था। वही अमेरिका में 1971 में द एशोसिएशन ऑफ मुस्लिम सोशल सायंटिस्ट्स की स्थापना करने वालों में अग्रणी थे। जो अब इस्लामीकरण की प्रक्रिया का नेतृत्व कर रही है। अब्दुल सुलेमान और अल फारूकी ही इस्लामीकरण की प्रक्रिया की प्रेरक शक्ति रहे हैं। मुस्लिम विद्वानों के ऐसे प्रयासों से 1981 में वाशिंगटन में द इन्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक थॉट (आईआईआईटी) और मलेशिया में इन्टरनेशनल इस्लामिक यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई।

ज्ञान के इस्लामीकरण में क्या कुछ शामिल है ? सारत: इसमें शामिल है इस्लामी विरासत पर मुड़कर नजर डालना, एक नई ज्ञान मीमांसा का विकास, और ज्ञान के नए प्रतिमानों व प्रविधियों की खोज। अल फारूकी के लिए इसका अर्थ है ज्ञान के संपूर्ण क्षेत्र का इस्लामी विश्वदृष्टि पर आधारित व उससे व्युत्पन्न श्रेणियों व वर्गीकरणों के आधार पर पुर्नविन्यास व पुनर्रचना (आईआईआईटी, 1987, पृ.15)। अल फारूकी की कार्य योजना विस्तृत रूप से उनके आलेखों 'ज्ञान का इस्लामीकरण: समस्याएं, सिद्धांत और संभावनाएं' (1988, पृ.54-62) में देखी जा सकती है।

मोना अबुल फद्ल के अनुसार इस्लामीकरण विचार और अभिग्रहण की वर्तमान संरचनाओं का नवरूपायन व पुनर्नवीकरण इस विधि से कि उन्हें इस्लामी परम्परा से बरामद संज्ञानात्मक, प्रभावात्मक व प्रतीकात्मक मूल्यों के संगठित समूहों द्वारा दरपेश मूलगामी आलोचना की रोशनी के सम्मुख कर दिया जाए (1988)। मुहम्मद मुमताज अली और तहा जाबिर अल-अल्बाना (अली, 1991) इस्लामीकरण को सभ्यता निर्माण का ज्ञानमीमांसात्मक या पद्धति मूलक चरण मानते हैं।

अब तक इस्लामीकरण के मुद्दे पर बहस - मुबाहिसे के लिए छह अंतर्राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित किये जा चुके हैं: सऊदी अरब (1977), पाकिस्तान (1980), बांग्लादेश (1981) इन्डोनेशिया (1982), मिस्र (1987) और दक्षिण अफ्रीका।

पहले परिसंवाद के प्रस्ताव थे : समकालीन इस्लामी विचार का नवरूपायन, इस्लामीकरण के अकादमिक व बौद्धिक आधारों को पुर्नपरिभाषित करने की आवश्यकता और एक शोध संस्थान की स्थापना। दूसरे परिसंवाद में मुस्लिम समाजविज्ञानियों को अपने अपने अनुशासनों का इस्लामीकरण करने के लिए आमंत्रित किया गया। तीसरा परिसंवाद पाठ्यसामग्री निर्माण व चौथा शिक्षण पद्धतियों के विकास पर केन्द्रित था। पांचवे में पिछले समस्त परिसंवादों की अनुशंषाओं को स्वीकार किया गया। दक्षिण अफ्रीका में हुए छठे परिसंवाद में ध्यान मुस्लिम स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण करने, कार्यरत व्यावसायिकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाने एवं प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम संबंधी दिशा निर्देश तय करने पर केन्द्रित था।

यद्यपि समस्त विज्ञान संस्कृतिबद्ध होते हैं लेकिन मुस्लिम विद्वानों की दृष्टि में समस्याएं समाज विज्ञानों में, प्राकृतिक व भौतिक विज्ञानों की अपेक्षा ज्यादा है। प्राकृतिक विज्ञानों के संबंध में यह प्रकृति की धारणा और विज्ञान की तर्क पद्धति तक सीमित है। समाज विज्ञानों के संबंध में समस्या अधिक पेचीदा है और इसका संबंध न सिर्फ मनुष्य और समाज के बारे में सामान्य समझ से है बल्कि खुद इन अनुशासनों के सिद्धांतों व विद्वानों का ध्यान समाज विज्ञानों पर अधिक केन्द्रित रहा है।

मुस्लिम संसार और पश्चिम में रहने वाले मुस्लिम विद्वान दोनों ही, विशेषत: वे जो समाज विज्ञानों से संबद्ध हैं, समाज विज्ञान की पारंपरिक पूर्व मान्यताओं को चुनौती दे रहे हैं और उस प्रतिक्रिया में संलग्न हैं जिसे 'समाज विज्ञानों का इस्लामीकरण' कहा जा सके। वे समाज विज्ञानों को इस्लामी परिप्रेक्ष्य में स्थित करने में मुब्तिला हैं और कुछ ऐसा निर्मित कर रहे हैं जिसे वे 'इस्लामी समाज विज्ञान' कहना चाहते हैं।

जो पहला कदम पिछले कुछ दशकों में उठाया गया वह था समाज विज्ञानों की धारणाओं व पूर्वग्रहों का आलोचना और इस्लामी विश्वदृष्टि के मूलाधारों के साथ रखकर उनकी परख। यह दो भिन्न संरचनाओं में मौजूद मत-वैभिन्नय को दर्शाने के लिए अनिवार्य था। वर्तमान विमर्श इस्लामी प्रतिमान, ज्ञान मीमांसा और पद्धति निर्माण पर एकाग्र है।

ज्ञान और विशेषकर समाज विज्ञानों के इस्लामीकरण पर पिछले कुछ दशकों में कई आलेख व पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 'सोशल एण्ड नैचुरल सायंसेज : द इस्लामिक पर्सपेक्टिव' नृशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र में इस्लामी रुख से लिखे हुए लेखों का संकलन है । किंग अब्दुल अजीज यूनिवर्सिटी, सऊदी अरब द्वारा प्रकाशित इस्लामी शिक्षा शृंखला के निम्न शीर्षक इस नये रुख को प्रतिबिम्बित करते हैं :

- समाज विज्ञानों का इस्लामीकरण
- इस्लामी नृशास्त्र के संघटक
- समकालीन समाजशास्त्र : एक इस्लामी प्रतिलोचन
- इस्लामी इतिहास का पुनराभिविन्यास
- मनोविज्ञान के इस्लामीकरण पर
- अर्थ शास्त्र की इस्लामी दृष्टि

द अमेरिकन जर्नल ऑव इस्लामिक सोशल सायंसेज निरन्तर इस्लामीकरण पर लेख प्रकाशित करता रहता है।

विवादी स्वर

जहां ज्ञान के देशज ढांचे का विकास औचित्यपूर्ण लगता है वहीं इस्लामीकरण का मुद्दा मुश्किलों व जटिलताओं से घिरा हुआ है। मलेशिया के अकेले अपवाद को छोड़कर इस परियोजना को कहीं भी अधिकृत सरकारी समर्थन नहीं है। मलेशिया की ही इन्टरनेशनल इस्लामिक यूनिवर्सिटी को छोड़कर दुनिया के किसी भी विश्वविद्यालय ने प्राकृतिक या समाज विज्ञानों में इस्लामीकृत पाठ्यक्रमों को लागू नहीं किया है। हालांकि मलेशिया के वर्तमान राजनीतिक व आर्थिक संकट के कारण इस विश्वविद्यालय के लिए भी इस्लामीकरण परियोजना को जारी रख पाना अब संभव नहीं रहा।

इस्लामीकरण परियोजना की आलोचना के प्रमुख बिन्दु निम्न हैं :

इस विषय पर उपलब्ध साहित्य का कुछ अंश अपने स्वर में स्पष्टत: पश्चिम-विरोधी है और आक्षेपात्मक है। इसका कारण संभवत: प्राकृतिक व समाज विज्ञानों के उन पहलुओं पर ज्यादा जोर देना है जो इस्लामी विश्वदृष्टि के विपरीत है।

- परियोजना से जुड़े विद्वान अब तक न तो इस्लामी ज्ञानमीमांसा और न ही इस्लामी शिक्षण पद्धति का कोई व्यवस्थित प्रारूप विकसित कर पाए हैं।
- अभी तक समाज विज्ञानों की एक भी इस्लामीकृत पाठ्यपुस्तक निर्मित नहीं हुई है हालांकि ऐसी अनुशंषा चालीस वर्ष पहले की जा चुकी थी और अब तक छह अंतर्राष्ट्रीय परिसंवाद इस पर आयोजित किए जा चुके हैं।

इस्लामीकरण उद्यम की सबसे बड़ी कमजोरी इस तथ्य में है कि मुस्लिम विद्वानों में प्रतिक्रिया और पद्धतियों के चुनाव के स्तर पर महत्त्वपूर्ण मतभेद हैं। कुछ विद्वान इस पूरे उद्धम को ही अप्रासंगिक मानते हैं। इनमें उत्तर-आधुनिकों, जो मानते हैं कि वर्तमान सभ्यता मानव जाति की श्रेष्ठतम उपलब्धि है, के अलावा वे विद्वान भी शामिल हैं जो समाज विज्ञानों के इस्लामीकरण के विचार को अर्थहीन पाते हैं। कुछ अन्य वे हैं जिसकी परियोजना से सिद्धांतत: सहमति नहीं है लेकिन जिन्हें पूरे उद्यम को लेकर कई शंकाएं हैं। उन्हें संदेह है कि मुस्लिम विद्वान समाज विज्ञानों के लिए पूर्णत: वैकल्पिक प्रतिमान कर सकते हैं।

जो परियोजना में संलग्न हैं, वे आश्वस्त हैं कि मुस्लिम संसार वर्तमान में जिस बौद्धिक दुविधा का सामना कर रहा है उसका यही

एकमात्र समाधान है। उन्हें अबू सुलेमान और अल फारूकी द्वारा आरंभ की गई प्रक्रिया में गहरी निष्ठा है और वे इस्लामीकरण के इन प्रवर्तकों द्वारा निरूपित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समर्पित हैं। लेकिन खुद ऐसे लोगों के बीच भी कुछ विवादी सुर हैं। कुछ को अल फारूकी की कार्य योजना अतिरंजित और जटिल लगती है (शफी, 1993)। वे कुछ अधिक व्यावहारिक कार्य योजनाएं प्रस्तावित भी करते हैं।

अबु सुलेमान और अल फारूकी दोनों ने नई शिक्षण पद्धतियों के विकास पर बल दिया। परन्तु कुछ विद्वानों को समाज विज्ञानों के लिए नई पद्धति की जरूरत अनिवार्य नहीं लगती। जहां फजलुर रहमान एक ओर इससे सहमत हैं कि समकालीन ज्ञान विज्ञान का अधिकांश पश्चिमी पूर्वग्रह से ग्रसित है वहीं दूसरी ओर वे इस्लामीकरण की कार्यनीति से असहमत हैं। ''इस्लामीकृत ज्ञान की प्रक्रिया है : मुस्लिम चेतना का विकास।'' (वही)

मुहम्मद सईद अल बुती भी इसी प्रकार नई पद्धति की जरूरत से इंकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि पारम्परिक मुस्लिम विद्वानों द्वारा इस्लामी पद्धति विकसित की जा चुकी थी और समकालीनों का काम इतना ही है कि वे इसे वर्तमान जरूरतों के प्रति संवेदनशील बनाऐं और समकालीन मुहावरे में इसका पुनर्कथन करें ताकि मुस्लिम विमर्श को दिशा निर्देश मिल सकें (वही)। नस्र के लिए इस्लामीकरण का अर्थ समाज विज्ञानों के पूर्ण रूपान्तरण से नहीं बल्कि 'उन पर एक नया रुख कायम करने' से है (नस्र 1981)।

जियाउद्दीन सरदार की दृष्टि में मुस्लिम विद्वानों को नये प्रतिमान विकसित करने चाहिए जिससे विभिन्न अनुशासन उद्भूत हो सकें (सरदार, पृ.48-49)। इसका समर्थन रगब ने भी किया है। जिनके मुताबिक मुस्लिम विद्वानों का आपद् कर्तव्य यह है कि वे ऐसा विन्यास निर्मित करें जिसमें मनुष्य के आनुभविक व परानुभविक पक्षों को एकीकृत किया जा सके ताकि मानवीय व्यवहार की एक समग्र व्यवस्था में समीक्षा की जा सके (1993)।

मुहम्मद आरिफ की मान्यता है कि तार्किक प्रत्यक्षवाद इस नये विन्यास की आधारभूमि हो सकती है (आरिफ, 1987) लेकिन इसके विपरीत राजनीति विज्ञान के लिए वैकल्पिक इस्लामी दृष्टिकोण की अपनी तलाश में राशिद मोटेन तार्किक प्रत्यक्षवाद को पूरी तरह खारिज करते हैं। और मोना अबुल फद्ल के अनुसार पश्चिमी विद्वता में ही दो ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो तार्किक प्रत्यक्षवाद का प्रत्याख्यान करने में मुस्लिम संसार की मदद कर सकती हैं : भाषा-चिंतन संबंधी आंदोलन और पराभौतिक परिप्रेक्ष्यों में इतिहास के प्रतिस्थापन्न की संभावना (अबुल फद्ल, 1989)।

उपसंहार - इस्लामीकरण की संभावनाएं

मैं इस्लामीकरण की संभावनाओं का आकलन करते हुए इस आलेख का समापन करना चाहता हूं।

अब तक के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस्लामीकरण की प्रक्रिया के सामने विचारधारात्मक एवं वित्तीय अवरोध है। फिर भी सकारात्मक पक्ष में यह कहा जा सकता है कि :

- इस्लामीकरण के लिए प्रतिबद्ध विद्वानों में से अधिकांश इसके अंतिम उद्देश्यों को लेकर सहमत हैं।
- यद्यपि अभी तक पाठ्यपुस्तकें निर्मित नहीं हुई हैं लेकिन पूर्व-महाविद्यालीय स्तर के लिए पाठ्यक्रम प्रारूप का विचार छठे परिसंवाद का ही प्रस्ताव है और द. अफ्रीका में कुछ मुस्लिम स्कूल संशोधित पाठ्यक्रम प्रायोगिक तौर पर लागू कर चुके हैं।
- द एशोसिएसन ऑव मुस्लिम सोशल सायंटिस्ट् (एएमएसएस) का प्रभाव धीरे-धीरे अमेरिका में बढ़ रहा है और लंदन में हाल ही में, इसकी एक शाखा स्थापित की गई है।
- इस्लामीकरण पर अमेरिका में पिछले दो दशकों से नियमित परिसंवाद हो रहे हैं।
- काफी अच्छी संख्या में विद्वान निरंतर इस्लामीकरण पर समाज विज्ञान के जर्नल्स में लेख प्रकाशित कर रहे हैं, पुस्तकें और मोनोग्राफ भी प्रकाशित हो रहे हैं।

इस सबके बावजूद यह भी स्पष्ट है कि अभी तक दृश्यमान भविष्य में ज्ञान का इस्लामीकरण मुख्यत: वैयक्तिक उद्यम रहने वाला है। वे जो इस परियोजना के औचित्य के कायल हैं वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रकाशन, संगोष्ठि और सेमिनार करते रहेंगे यद्यपि इसका वृहत्तर क्रियान्वयन, वर्तमान परिस्थितियों में संभव नजर नहीं आता। हो सकता है मुस्लिम संसार में नहीं, पश्चिम के स्वतंत्र विद्यालयों में अंशत: इस्लामीकृत पाठ्यक्रम व्यवहृत होने लगे। देशज ज्ञान व्यवस्थाओं के विकास की वर्तमान प्रवृत्ति भी निस्सन्देह इस्लामीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करेगी। ◆

अनुवाद : गिरिराज किराडू